Chapter छत्तीस

वृषभासुर अरिष्ट का वध

इस अध्याय में बतलाया गया है कि कृष्ण ने किस तरह अरिष्टासुर का वध किया और जब कंस को नारद से यह ज्ञात हुआ कि कृष्ण तथा बलराम वसुदेव के पुत्र हैं, तो उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई।

अरिष्टासुर कृष्ण तथा बलराम दोनों को मार डालना चाहता था अत: उसने पैने सींगो वाले विशाल बैल का रूप धारण किया। जब अरिष्टासुर ग्वालों के ग्राम के निकट आया तो सारे लोग भयभीत हो उठे किन्तु भगवान् ने उन्हें शान्त किया और जब बैल ने उन पर आक्रमण किया, तो उन्होंने उसके दोनों

सींग पकड़ लिए और उसे छह गज की दूरी पर फेंक दिया। यद्यपि वह शक्तिहीन हो चुका था किन्तु वह पुन: कृष्ण पर वार करना चाहता था। इस तरह, पसीने से भीगते हुए, उसने भगवान् पर एक बार फिर वार किया। इस बार कृष्ण ने उसके सींगों को दबोच लिया, उसे भूमि पर पटक दिया और गीले कपड़ों की लादी के समान उसे पछाड़ दिया। उस असुर ने रक्त वमन किया और अपने प्राण त्याग दिये। तत्पश्चात् देवताओं तथा ग्वालों से सम्मानित होकर कृष्ण तथा बलराम अपने गाँव लौट आये।

कुछ काल अनन्तर देवर्षि नारदमुनि राजा कंस से भेंट करने गये। उन्होंने राजा को बतलाया कि कृष्ण तथा बलराम वास्तव में नन्द के नहीं अपितु वसुदेव के पुत्र थे। वसुदेव ने तो कंस के भय से इन दोनों बालकों को नन्द की देखरेख में रख दिया था। यही नहीं, नारद ने कहा कि कंस की मृत्यु उन्हीं के हाथों होगी।

जब कंस ने यह सुना तो वह भय तथा क्रोध से काँपने लगा और अत्यधिक क्षुब्ध होकर सोचने लगा कि कृष्ण तथा बलराम को किस तरह नष्ट किया जाय। उसने चाणूर तथा मुष्टिक नामक असुरों को बुलाया और आदेश दिया कि मल्लयुद्ध में वे उन दोनों भाइयों का वध कर दें। तत्पश्चात् अपने कर्तव्यों को पूरा करने में दक्ष अक्रूर का हाथ पकड़ कर कंस ने उसे व्रज जाकर उन दोनों बालकों को मथुरा लाने के लिए राजी किया। अक्रूर ने कंस का आदेश शिरोधार्य किया और अपने घर चला गया।

श्री बादरायणिरुवाच
अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः ।
महीम्महाककुत्काय: कम्पयन्खुरविक्षताम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री बादरायणि: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—आगे; तर्हि—तब; आगत:—आया; गोष्ठम्—ग्वालों के गाँव में; अरिष्ट:—अरिष्ट नामक; वृषभ-असुर:—वृषभासुर; महीम्—पृथ्वी को; महा—विशाल; ककुत्—डिल्ला वाला; काय:—शरीर; कम्पयन्—कँपाते हुए; खुर—अपने खुरों से; विक्षताम्—क्षत-विक्षत।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : तत्पश्चात् अरिष्टासुर गोपों के गाँव में आया। वह बड़े डिल्ले वाले बैल के रूप में प्रकट होकर अपने खुरों से पृथ्वी को क्षत-विक्षत करके उसे कँपाने लगा।

तात्पर्य : *श्री विष्णु पुराण* के अनुसार अरिष्टासुर संध्या-समय कृष्ण के गाँव में प्रविष्ट हुआ जब वे गोपियों के साथ नाचने की तैयारी कर रहे थे।

प्रोदोषार्धे कदाचित्तु रासासक्ते जनार्दने।

त्रासयन् समदो गोष्ठमरिष्ट: समुपागत: ॥

''एक बार धुँधलके के समय जब जनार्दन रासनृत्य करने के लिए उस्तुक थे तो अरिष्टासुर उन्मत्त होकर ग्वालों के ग्राम में घुसकर उन्हें डराने लगा।''

रम्भमाण: खरतरं पदा च विलिखन्महीम् ।
उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन् ।
किञ्चित्किञ्चिच्छकृन्मुञ्चन्मूत्रयन्स्तब्धलोचन: ॥ २ ॥

शब्दार्थ

रम्भमाण:—रँभाते हुए; खर-तरम्—खूब तेजी से; पदा—अपने खुरों से; च—तथा; विलिखन्—खुरचते हुए; महीम्—पृथ्वी को; उद्यम्य—ऊपर उठाकर; पुच्छम्—अपनी पूँछ; वप्राणि—बाँधों को; विषाण—अपने सींगों की; अग्रेण—नोकों से; च—तथा; उद्धरन्—उठाकर चीरते हुए; किञ्चित् किञ्चित्—कुछ कुछ; शकृत्—मल; मुञ्चन्—त्याग करते हुए; मूत्रयन्—पेशाब करते हुए; स्तब्ध—चमकदार; लोचन:—आँखें।

अरिष्टासुर ने जोर से रँभाते हुए धरती को खुरों से कुरेदा। वह अपनी पूँछ उठाये और अपनी आँखें चमकाता अपने सींगों के नौकों से बाँधों को चीरने लगा और बीच बीच में थोड़ा थोड़ा मल-मूत्र भी छोड़ता जाता था।

यस्य निर्ह्रादितेनाङ्ग निष्ठुरेण गवां नृणाम् ।
पतन्त्यकालतो गर्भा: स्रवन्ति स्म भयेन वै ॥ ३ ॥
निर्विशन्ति घना यस्य ककुद्यचलशङ्कया ।
तं तीक्ष्णशृङ्गमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसु: ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसकी; निर्ह्रादितेन—गर्जन से; अङ्ग—हे राजा (परीक्षित); निष्ठुरेण—निष्ठुर, निर्मोही; गवाम्—गौवों के; नृणाम्—मनुष्यों के; पतन्ति—गिर जाते हैं; अकालत:—असमय; गर्भा:—गर्भ; स्रवन्ति स्म—गर्भपात हो जाता है; भयेन—भय से; वै—निस्सन्देह; निर्विशन्ति—प्रवेश करते हैं; घना:—बादल; यस्य—जिसके; ककुदि—डिल्ले पर; अचल—पर्वत के रूप में; शङ्कया—भ्रम से; तम्—उसको; तीक्ष्ण—तेज; शृङ्गम्—सींग; उद्वीक्ष्य—देखकर; गोप्य:—गोपियाँ; गोपा:—तथा ग्वाले; च—तथा; तत्रसु:—भयभीत हो उठे।

हे राजन्, तीखे सींगो वाले अरिष्टासुर के डिल्ले को पर्वत समझकर बादल उसके आसपास मँडराने लगे, अत: जब ग्वालों तथा गोपियों ने उस असुर को देखा तो वे भयभीत हो उठे। दरअसल उसकी गर्जना की तीव्र गूँज इतनी भयावह थी कि गर्भिणी गौवों तथा स्त्रियों के गर्भपात हो गये।

तात्पर्य : वैदिक वाङ्मय में गर्भपात की कई श्रेणियाँ मान्य हैं—*आचतुर्थाद् भवेत् स्राव: पात: पञ्चमषष्टयो:/ अत ऊर्ध्वं प्रसूति: स्यात्*—''चौथे मास तक समय से पूर्व शिशु-जन्म *स्राव* कहलाता है,

पाँचवें तथा छठे मास में *पात* तथा इसके बाद *प्रसूति* (जन्म) कहलाता है।''

पशवो दुद्रुवुर्भीता राजन्सन्त्यज्य गोकुलम् ।
कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविन्दं शरणं ययुः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

पशवः—घरेलू पशु; दुद्रुवुः—भाग गये; भीताः—डर के मारे; राजन्—हे राजन्; सन्त्यज्य—छोड़कर; गो-कुलम्—चरागाह; कृष्ण कृष्ण इति—''कृष्ण कृष्ण'' इस तरह; ते—वे (वृन्दावनवासी); सर्वे—सभी; गोविन्दम्—गोविन्द की; शरणम्—शरण में; ययुः—गये।

हे राजन्, घरेलू पशु भय के मारे चरागाह से भाग गये और सारे निवासी ''कृष्ण कृष्ण'' चिल्लाते हुए शरण के लिए भगवान् गोविन्द के पास दौड़े।

भगवानपि तद्वीक्ष्य गोकुलं भयविद्रुतम् ।
मा भैष्टेति गिराश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान् ने; अपि—निस्सन्देह; तत्—उसे; वीक्ष्य—देखकर; गो-कुलम्—गोकुल को; भय—भय से; विद्रुतम्—भगाया हुआ; मा भैष्ट—डरना मत; इति—इस प्रकार; गिरा—शब्दों से; आश्वास्य—आश्वासन देकर; वृष-असुरम्—वृषासुर को; उपाह्वयत्—ललकारा।

जब भगवान् ने देखा कि सारा गोकुल भय के मारे भगा जा रहा है, तो उन्होंने यह कहकर उन्हें आश्वासन दिया, ''डरना मत।'' तत्पश्चात् उन्होंने वृषासुर को इस प्रकार ललकारा।

गोपालैः पशुभिर्मन्द त्रासितैः किमसत्तम ।
मयि शास्तरि दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

गोपालैः—ग्वालों के साथ; पशुभिः—तथा उनके पशुओं के साथ; मन्द—हे मूर्ख; त्रासितैः—डरे हुए; किम्—क्या प्रयोजन; असत्तम—रे सर्वाधिक दुष्ट; मयि—मेरे रहते; शास्तरि—दण्ड देने वाले के रूप में; दुष्टानाम्—दुष्टों का; त्वत्-विधानाम्—तुम जैसे; दुरात्मनाम्—दुरात्माओं का।

रे मूर्ख! रे दुष्ट! तुम क्या सोचकर ग्वालों को तथा उनके पशुओं को डरा रहे हो जबकि मैं तुम जैसे दुरात्माओं को दण्ड देने के लिए यहाँ हूँ।

इत्यास्फोत्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन् ।
सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार बोलते हुए; आस्फोत्य—अपनी भुजाएँ ठोंकते; अच्युतः—अच्युत भगवान्; अरिष्टम्—अरिष्टासुर को; तल—अपनी हथेली की ताल से; शब्देन—शब्द के साथ; कोपयन्—क्रोध करते हुए; सख्युः—मित्र के; अंसे—कन्धे पर; भुज—अपनी बाँह; आभोगम्—साँप के शरीर (जैसी); प्रसार्य—फैलाकर; अवस्थितः—खड़े थे; हरिः—हरि भगवान्।

ये शब्द कहकर अच्युत भगवान् हरि ने अपनी हथेलियों से अपनी बाँहें ठोंकीं जिससे जोर की ध्वनि से अरिष्ट और अधिक क्रुद्ध हो उठा। तब भगवान् अपनी बलशाली सर्प जैसी बाँह अपने एक सखा के कन्धे पर डालकर असुर की ओर मुँह करके खड़े हो गये।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण उस अज्ञानी असुर के प्रति उपेक्षा प्रकट करने लगे।

सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन् ।
उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; अपि—निस्सन्देह; एवम्—इस प्रकार; कोपितः—क्रुद्ध; अरिष्टः—अरिष्ट; खुरेण—अपने खुरों से; अवनिम्—पृथ्वी को; उल्लिखन्—कुरेदते हुए; उद्यत्—उठी हुई; पुच्छ—अपनी पूँछ के भीतर; भ्रमन्—घूमते हुए; मेघः—बादल; क्रुद्धः—तमतमाया; कृष्णम्—कृष्ण की ओर; उपाद्रवत्—आक्रमण किया, झपटा।

इस तरह उकसाने पर अरिष्ट ने अपने एक खुर से धरती कुरेदी और तब वह क्रोध के साथ कृष्ण पर झपटा। ऊपर उठी हुई उसकी पूँछ के चारों ओर बादल मँडरा रहे थे।

अग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् ।
कटाक्षिप्याद्रवत्तूर्णमिन्द्रमुक्तोऽशनिर्यथा ॥ १० ॥

शब्दार्थ

अग्र—आगे; न्यस्त—झुकाते हुए; विषाण—अपने सींगों की; अग्रः—नोक; स्तब्ध—टकटकी लगाये; असृक्—लाल, रक्त जैसी; लोचनः—आँखें; अच्युतम्—भगवान् कृष्ण को; कट-आक्षिप्य—कटाक्ष करते हुए; अद्रवत्—दौड़ा; तूर्णम्—पूरे वेग से; इन्द्र-मुक्तः—इन्द्र द्वारा छोड़ा गया; अशनिः—वज्र; यथा—सदृश।

अपने सींगों के अग्रभाग सामने की ओर सीधे किये हुए तथा अपनी रक्तिम आँखों की बगल से तिरछे घूर कर भय दिखाकर अरिष्ट पूरे वेग से कृष्ण की ओर झपटा मानो इन्द्र द्वारा चलाया गया वज्र हो।

गृहीत्वा शृङ्गयोस्तं वा अष्टादश पदानि सः ।
प्रत्यपोवाह भगवान्गजः प्रतिगजं यथा ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

गृहीत्वा—पकड़कर; शृङ्गयोः—दोनों सींगों से; तम्—उसको; वै—निस्सन्देह; अष्टादश—अठारह; पदानि—पग; सः—उस; प्रत्यपोवाह—पीछे फेंका; भगवान्—भगवान् ने; गजः—हाथी; प्रति-गजम्—अपने प्रतिद्वन्द्वी हाथी को; यथा—जिस तरह।

भगवान् कृष्ण ने अरिष्टासुर को सींगों से पकड़ लिया और उसे अठारह पग पीछे फेंक दिया

जिस तरह एक हाथी अपने प्रतिद्वन्दी हाथी से लड़ते समय करता है।

सोऽपविद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरम् ।
आपतत्स्विन्नसर्वाङ्गो निःश्वसन्क्रोधमूर्च्छितः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; अपविद्धः—पीछे फेंका गया; भगवता—भगवान् द्वारा; पुनः—फिर; उत्थाय—उठकर; सत्वरम्—तुरन्त; आपतत्—आक्रमण किया; स्विन्न—पसीने से तर; सर्व—सारे; अङ्गः—अंग; निःश्वसन्—हाँफते हुए; क्रोध—क्रोध से; मूर्च्छितः—बेहोश, मूर्च्छित।

इस प्रकार भगवान् द्वारा पीछे धकेले जाने पर, वृषासुर फिर से उठ खड़ा हुआ और हाँफता हुआ तथा सारे शरीर पर आए पसीने से तर अचेत-क्रोध में आकर उन पर झपटा।

तमापतन्तं स निगृह्य शृङ्गयोः
पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले ।
निष्पीडयामास यथार्द्रमम्बरं
कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; आपतन्तम्—आक्रमण करते; सः—उसने; निगृह्य—पकड़कर; शृङ्गयोः—दोनों सींगों से; पदा—अपने पाँव से; समाक्रम्य—कुचलते हुए; निपात्य—उसे गिराकर; भू-तले—भूमि पर; निष्पीडयाम् आस—उसे पीटा; यथा—जिस तरह; अर्द्रम्—गीले; अम्बरम्—कपड़े को; कृत्वा—करके; विषाणेन—उसकी सींग से; जघान—प्रहार किया; सः—वह; अपतत्—गिर पड़ा।

ज्योंही अरिष्ट ने आक्रमण किया, भगवान् कृष्ण ने उसके सींग पकड़ लिये और अपने पाँव से उसे धरती पर गिरा दिया। तब भगवान् ने उसे ऐसा लताड़ा मानो कोई गीला वस्त्र हो और अन्त में उन्होंने उसका एक सींग उखाड़कर उसीसे उसकी तब तक पिटाई की जब तक वह दण्ड के समान धराशायी नहीं हो गया।

असृग्वमन्मूत्रशकृत्समुत्सृजन्
क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः ।
जगाम कृच्छ्रं निरृतेरथ क्षयं
पुष्पैः किरन्तो हरिमीडिरे सुराः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

असृक्—रक्त; वमन्—उगलता; मूत्र—पेशाब; शकृत्—तथा मल; समुत्सृजन्—बुरी तरह से निकालता हुआ; क्षिपन्—फेंकते हुए; च—तथा; पादान्—अपने पाँवों को; अनवस्थित—अस्थिर; ईक्षणः—आँखें; जगाम—चला गया; कृच्छ्रम्—पीड़ा के साथ; निरृतेः—मृत्यु के; अथ—तब; क्षयम्—धाम को; पुष्पैः—फूलों से; किरन्तः—बिखेरते हुए; हरिम्—भगवान् कृष्ण पर; ईदिरे—पूजा की; सुरः—देवताओं ने।

रक्त वमन करते तथा बुरी तरह से मल-मूत्र त्याग करते, अपने पाँव पटकते तथा अपनी आँखें इधर-उधर पलटते, अरिष्टासुर बड़ी ही पीड़ा के साथ मृत्यु के धाम चला गया। देवताओं ने कृष्ण पर फूल बरसाकर उनका सम्मान किया।

एवं कुकुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः द्विजातिभिः ।
विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनोत्सवः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; कुकुद्मिनम्—डिल्ले वाले (वृषासुर) को; हत्वा—मारकर; स्तूयमानः—प्रशंसित हुए; द्विजातिभिः—ब्राह्मणों द्वारा; विवेश—प्रविष्ट हुआ; गोष्ठम्—ग्वालों के गाँव में; स-बलः—बलराम सहित; गोपीनाम्—गोपियों के; नयन—आँखों के लिए; उत्सवः—उत्सव स्वरूप।

इस तरह अरिष्ट नामक वृषासुर का वध करने के बाद, गोपियों के नेत्रों के लिए उत्सव स्वरूप कृष्ण, बलराम सहित ग्वालों के ग्राम में प्रविष्ट हुए।

तात्पर्य : इस श्लोक में कृष्ण के भीतर आध्यात्मिक गुणों में जो सूक्ष्म विरोधाभास है उसका उदाहरण दिया गया है। इस चार पंक्तियों वाले श्लोक में एकही साथ हम जान पाते हैं कि भगवान् कृष्ण ने बलशाली दुष्ट असुर का वध किया और उनके कैशोर सौन्दर्य से उनकी सखियों को परम आनन्द मिला। भगवान् कृष्ण वज्र की तरह कठोर हैं और गुलाब के फूल की तरह कोमल जो उनके प्रति हमारे मनोभावों पर निर्भर करता है। अरिष्टासुर कृष्ण तथा उनके सारे साथियों को मारना चाहता था अतः भगवान् ने उसे गीले कपड़े की भाँति पछाड़ कर मार डाला। किन्तु गोपियाँ कृष्ण से प्रेम करती थीं अतः उन्होंने उनसे माधुर्य प्रेम का युवा बालक की तरह आदान-प्रदान किया।

अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ।
कंसायाथाह भगवान्नारदो देवदर्शनः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

अरिष्टे—अरिष्ट के; निहते—मारे जाने पर; दैत्ये—असुर; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; अद्भुत-कर्मणा—अद्भुत कर्मों वाले; कंसाय—कंस से; अथ—तब; आह—कहा; भगवान्—शक्तिशाली मुनि; नारदः—नारद ने; देव-दर्शनः—जिनकी दृष्टि दैवतुल्य है।

अद्भुत काम करने वाले श्रीकृष्ण द्वारा अरिष्टासुर का वध हो जाने पर नारदमुनि राजा कंस से बतलाने गये। दैवीदृष्टि वाले इस शक्तिशाली मुनि ने राजा से इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : *देवदर्शन* पद को कई प्रकारों से समझा जा सकता है, जो सभी इस कथन के संदर्भ तथा

तात्पर्य से मेल रखते हैं। *देव* का अर्थ है ''देवता'' और *दर्शन:* का अर्थ है ''देखना'' या ''महान् व्यक्तित्व का दर्शन।'' इस तरह *देवदर्शन* जो कि नारदमुनि का नाम है, यह सूचित करता है कि नारद को भगवान् का दर्शन करने की सिद्धि प्राप्त थी या कि नारद का दर्शन करना ईश्वरदर्शन के तुल्य है क्योंकि नारद भगवान् के शुद्ध प्रतिनिधि हैं तथा नारद का दर्शन देवताओं के दर्शन के समान है जिन्हें देव भी कहा जाता है। एक ही शब्द देवदर्शन के इतने अर्थ श्रीमद्भागवत की भाषा-समृद्धि को दर्शाने वाले हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने पुराणों से २० श्लोक उद्धृत किये हैं जिनमें कृष्ण द्वारा अरिष्टासुर वध किये जाने के बाद राधा तथा कृष्ण के मध्य हुई परिहास-वार्ता का वर्णन है। इस वार्ता में जिसे आचार्य ने बड़ी कृपापूर्वक उद्धृत किया है, राधाकुण्ड तथा श्यामकुण्ड की उत्पत्ति के विषय में वर्णन मिलता है। ये श्लोक निम्नवत् हैं—

मास्मान् स्पृशाद्य वृषभार्दन हन्त मुग्धा
घोरोऽसुरोऽयम् अयि कृष्ण तदप्ययं गौ:।
वृतो यथा द्विज इहास्त्ययि निष्कृति: किं
शुद्ध्येद्भवांस्त्रिभुवनस्थिततीर्थकृच्छ्रात् ॥

''भोली-भाली युवा गोपियों ने कहा : हे वृष (बैल) के हन्ता कृष्ण! अब तुम हमें मत छुओ। ओह, यद्यपि अरिष्ट विकराल असुर था, किन्तु था तो बैल ही। अत: तुम्हें उसी तरह प्रायश्चित्त करना होगा जिस तरह वृत्रासुर को मारने के बाद इन्द्र ने किया था। किन्तु तुम तीनों लोकों में हर तीर्थस्थल में जाने का कष्ट उठाए बिना अपने को किस तरह शुद्ध कर सकोगे?''

किं पर्यटामि भुवनान्यधुनैव सर्वा
आनीय तीर्थविततीः करवाणि तासु।
स्नानं विलोकयत तावदिदं मुकुन्द:
प्रोच्यैव तत्र कृतवान् बत पार्ष्णिघातम्॥

''[कृष्ण ने उत्तर दिया] ''मैं ब्रह्माण्ड-भर में क्यों घूमूँगा? मैं असंख्य तीर्थस्थलों को यहीं ले आऊँगा और उनमें स्नान कर लूँगा। देखो न!'' यह कहकर भगवान् मुकुन्द ने अपनी एडी से भूमि पर

प्रहार किया।

पातालतो जलमिदं किल भोगवत्या

आयातमत्र निखिला अपि तीर्थसङ्घाः।

आगच्छतेति भगवद्वचसा त एत्य

तत्रैव रेजुरथ कृष्ण उवाच गोपीः॥

''[तब उन्होंने कहा] ''यह रहा भोगवती नदी का जल जो पाताल खण्ड से आ रहा है। और अब, हे तीर्थस्थानो! आप सब यहीं आ जाइये।'' जब भगवान् ने ये शब्द कहे तो सारे तीर्थ वहाँ पहुँच गये और उनके समक्ष प्रकट हुए। तब कृष्ण ने गोपियों को इस प्रकार सम्बोधित किया।''

तीर्थानि पश्यत हरेर्वचसा तवैवं

नैव प्रतीम इति ता अथ तीर्थवर्याः।

प्रोचुः कृताञ्जलिपुटा लवणाब्धिरस्मि

क्षीराब्धिरस्मि शृणुतामरदीर्घिकास्मि॥

''समस्त तीर्थों को देखो न!''

किन्तु गोपियों ने उत्तर दिया, ''तुम जैसा कह रहे हो वैसा हम नहीं देख पा रहीं''

''तब उन श्रेष्ठ तीर्थों ने हाथ जोड़कर कहा:

''मैं लवण सागर हूँ।''

''मैं क्षीर सागर हूँ।''

''मैं अमर-दीर्घिका हूँ।''

शोणोऽपि सिन्धुरहमस्मि भवामि ताम्र-

पर्णी च पुष्करमहं च सरस्वती च।

गोदावरी रविसुता सरयुः प्रयागो

रेवास्मि पश्यत जलं कुरुत प्रतीतम्॥

''मैं शोण नदी हूँ'' ''मैं सिन्धु नदी हूँ'' ''मैं ताम्रपर्णी हूँ'' ''मैं पुष्कर तीर्थ हूँ'' ''मैं सरस्वती नदी हूँ'' ''और हम हैं गोदावरी, यमुना तथा रेवा नदियाँ और प्रयाग स्थित नदियों का संगम। जरा

हमारे जल को तो देखो।''

स्नात्वा ततो हरिरतिप्रजगल्भ एव

शुद्धः सरोऽप्यकरवं स्थितसर्वतीर्थम्।

युष्माभिरात्मजनुषीह कृतो न धर्मः

कोऽपि क्षितावथ सखीर्निजगाद राधा॥

''स्नान द्वारा शुद्ध हो लेने के बाद भगवान् हरि एकदम अक्खड़ बन गये और उन्होंने कहा, ''मैंने विभिन्न तीर्थों वाले एक सरोवर का निर्माण कर दिया किन्तु तुम गोपियों ने इस पृथ्वी पर ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए एक भी धार्मिक कृत्य कभी नहीं किया।'' तब श्रीमती राधारानी ने अपनी सखियों को इस तरह से सम्बोधित किया।''

कार्यं मयाप्यतिमनोहरकुण्डमेकं

तस्माद् यतध्वमिति तद्वचनेन ताभिः।

श्रीकृष्णकुण्डतटपश्चिमदिश्यमन्दो

गर्तः कृतो वृषभदैत्यखुरै व्यलोकि॥

''मैं इससे भी अधिक सुन्दर सरोवर बना डालूँगी। अतः तुम लोग चलकर कार्य शुरू करो।'' इन शब्दों को सुनकर गोपियों ने देखा कि अरिष्टासुर के खुरों से श्रीकृष्णकुण्ड के पश्चिम में एक उथला गड्ढा बन गया था।''

तत्रार्द्रमृन्मृदुलगोलततीः प्रतिस्व-

हस्तोद्धृता अनतिदूरगता विधाय।

दिव्यं सरः प्रकटितं घटिकाद्वयेन

ताभिर्विलोक्य सरसं स्मरते स्म कृष्णः॥

''वहीं पास में समस्त गोपियों ने अपने हाथों से मुलायम दलदल भूमि को कुरेदना शुरू कर दिया और इस तरह एक घंटे के थोड़े से समय में एक दिव्य कुण्ड प्रकट हो गया। उनके द्वारा बनाये गये इस सरोवर को देखकर कृष्ण चकित रह गए।''

प्रोचे च तीर्थसलिलै परिपूरयैतन्

मत्कुण्डतः सरसिजाक्षि सहालिभिस्त्वम् ।

राधा तदा न न न नेति जगाद् यस्मात्

त्वत्कुण्डनीरम् उरुगोवधपातकाक्तम् ॥

''उन्होंने कहा, ''हे कमल-नेत्रों वाली, आगे बढ़ो! तुम तथा तुम्हारी सखियाँ इस तालाब को मेरे तालाब के जल से भरो।''

किन्तु राधा ने उत्तर दिया, ''ना, ना, ना, ना! यह असम्भव है क्योंकि तुम्हारे तालाब का जल गो-वध के भीषण पाप से दूषित है।''

आहृत्य पुण्यसलिलं शतकोटिकुम्भै

सख्यर्बुदेन सह मानसजाह्नवीतः ।

एतत् सरः स्वमधुना परिपूरयामि

तेनैव कीर्तिमतुलां तनवानि लोके ॥

''मैं अपनी असंख्य गोपी सहेलियों से करोड़ों घड़ों में भराकर मानसगंगा का शुद्ध जल यहाँ मँगवाऊँगी। इस तरह मैं अपने जल से इस तालाब को भरूँगी और इसे सम्पूर्ण जगत में अप्रतिम प्रसिद्ध बना दूँगी।''

कृष्णेङ्गितेन सहसैत्य समस्त तीर्थ

सख्यस्तदीयसरसो धृतदिव्यमूर्तिः ।

तुष्टाव तत्र वृषभानुसुतां प्रणम्य

भक्त्या कृताञ्जलिपुटः स्रवदस्रधारः ॥

''तब कृष्ण ने उस दैवी पुरुष को इंगित किया जो समस्त तीर्थों का अन्तरंगी था। वह व्यक्ति सहसा कृष्णकुण्ड से उठ खड़ा हुआ और उसने श्रीवृषभानु की पुत्री (राधारानी) को नमस्कार किया। फिर दोनों हाथ जोड़े तथा आँखों से अश्रु ढुलकाते हुए उसने स्तुति करनी प्रारम्भ की।''

देवि त्वदीयमहिमानमवैति सर्व

शास्त्रार्थावित्र च विधिर्न हरो न लक्ष्मीः ।

किन्त्वेक एव पुरुषार्थशिरोमणिस्त्वत्-

प्रस्वेदमार्जनपरः स्वयमेव कृष्णः ॥

''हे देवि! समस्त शास्त्रों के वेत्ता ब्रह्मा तक आपकी कीर्ति को नहीं समझ पाते, न ही शिवजी या लक्ष्मी। समस्त मानवीय उद्योग के चरमलक्ष्य केवल कृष्ण ही उसे समझ सकते हैं और जब आप थककर अपने पसीने को धो देती हैं, तो वे अपने को कृतकृत्य मानते हैं।''

यश्चारुयावकरसेन भवत्पदाब्जम्

आरज्य नूपुरमहो निदधाति नित्यम्।

प्राप्य त्वदीयनयनाब्जतटप्रसादं

स्वं मन्यते परमधन्यतमं प्रहृष्यन् ॥

तस्याज्ञयैव सहसा वयमाजगाम

तत्पार्ष्णिघाटकृतकुण्डवरे वसामः।

त्वं चेत्प्रसीदसि करोषि कृपाकटाक्षं

तर्ह्येव तर्षविटपी फलितो भवेन्नः ॥

''वे आपके चरणकमलों को सदैव अमृतमय चारु तथा यावक से लेपित करते रहते हैं और उन्हें घुंघरुओं से सजाते हैं। वे आपके चरणकमलों की अँगुलियों के अग्रभागों को तुष्ट करके हर्ष अनुभव करते हैं और अपने को परम धन्य मानते हैं। उन्हीं की आज्ञा से हम इस सर्वोत्तम कुण्ड में रहने तुरन्त आ गए हैं जिसे उन्होंने अपनी एडी के एक प्रहार से उत्पन्न कर दिया था। किन्तु यदि आप अब हम पर प्रसन्न हो जाँय और अपनी कृपा दृष्टि डालें तो हमारा इच्छा रूपी वृक्ष फलित हो सकता है।''

श्रुत्वा स्तुतिं निखिलतीर्थगणस्य तुष्टा

प्राह स्म तर्षमयि वेदयतेति राधा।

याम त्वदीयसरसीं सफला भवाम

इत्येव नो वर इति प्रकटं तदोचुः ॥

''समस्त तीर्थों की सभा के प्रतिनिधि की यह स्तुति सुनकर श्रीराधा प्रसन्न हो उठीं और बोलीं, ''तुम कृपया अपनी इच्छा कह सुनाओ।''

तब उन्होंने स्पष्ट कहा, ''हमारा जीवन तभी धन्य होगा जब हम आपके कुण्ड में आ सकें यही वर

हम चाहते हैं।''

आगच्छतेति वृषभानुसुता स्मितास्या

प्रोवाच कान्तवदनाब्जधृताक्षिकोणा।

सख्योऽपि तत्र कृतसम्मतयः सुखाब्धौ

मग्ना विरेजुरखिला स्थिरजङ्गमाश्च॥

''वृषभानु सुता ने अपने प्रियतम को अपनी आँखों की कोरों से देखते हुए मुसकराकर उत्तर दिया, ''कृपया आप आयें।'' उनकी सारी सखियाँ उनके निर्णय को मान गईं और आनन्दमग्न हो गईं। निस्संदेह समस्त चर तथा अचर प्राणियों का सौन्दर्य बढ़ गया।''

प्राप्य प्रसादमथ ते वृषभानुजायाः

श्रीकृष्णकुण्डगततीर्थवराः प्रसह्य।

भित्त्वेव भित्तिम् अतिवेगत एव राधा-

कुण्डं व्यधुः स्वसलिलै परिपूर्णमेव॥

''श्रीमती राधारानी की कृपा का प्रसाद पाकर श्रीकृष्णकुण्ड में स्थित पवित्र नदियों तथा सरोवरों ने सीमा की दीवारें बलपूर्वक तोड़ दीं और तेजी से अपने जल से राधाकुण्ड को लबालब भर दिया।''

प्रोचे हरिः प्रियतमे तव कुण्डमेतन्

मत्कुण्डतोऽपि महिमाधिकमस्तु लोके।

अत्रैव मे सलिल केलिरिहैव नित्यं

स्नानं यथा त्वमसि तद्वदिमं सरो मे॥

''तब भगवान् हरि बोले, ''हे राधा! तुम्हारा यह कुण्ड सारे विश्व में मेरे कुण्ड से भी अधिक विख्यात हो। मैं यहाँ पर नित्य ही स्नान करने और जल-लीलाएँ करने आया करूँगा। निस्सन्देह, यह सरोवर तुम्हारे समान ही मुझे प्रिय है।''

राधाब्रवीदहमपि स्वसखीभिरेत्य

स्नास्याम्यरिष्टशतमर्दनमस्तु तस्य।

योऽरिष्टमर्दनसरस्युरुभक्तिरत्र

स्नायाद् वसेन्मम स एव महाप्रियोऽस्तु॥

''राधा ने उत्तर दिया, ''मैं भी आपके कुंड में स्नान करने आया करूँगी भले ही आप यहाँ पर सैकड़ों अरिष्टासुरों का वध क्यों न करें। भविष्य में अरिष्टासुर को दंड दिये गये स्थान पर स्थित इस सरोवर में जिस किसी को उत्कट भक्ति होगी और जो भी इसमें स्नान करेगा या इसके पास निवास करेगा वह निश्चय ही मुझे अत्यन्त प्रिय होगा।''

रासोत्सवं प्रकुरुते स्म च तत्र रात्रौ

कृष्णाम्बुदः कृतमहारसहर्षवर्षः।

श्रीराधिकाप्रवरविद्युदलंकृतश्री-

स्त्रैलोक्यमध्यविततीकृतदिव्यकीर्तिः॥

''उस रात कृष्ण ने राधाकुण्ड पर रासनृत्य प्रारम्भ किया जिससे आनन्दधारा उमड़ पड़ी। श्रीकृष्ण बादल के समान लगते थे और श्रीमती राधारानी बिजली की तेज चमक के सदृश थीं जो अपने प्रभूत सौन्दर्य से आकाश को पूरित कर रही थीं। इस तरह उनकी दैवी महिमा तीनों लोकों में व्याप्त हो गई।''

अन्तिम टिप्पणी के रूप में यह बतला दिया जाय कि महामुनि होने के कारण नारद समझ गये थे कि अरिष्ट वध के साथ ही कृष्ण की वृन्दावन-लीलाओं का लगभग अन्त हो रहा है अतएव वे कृष्ण की लीलाओं को वृन्दावन से मथुरा में स्थानान्तरित होने को सुगम बनाने की दृष्टि से कंस के पास पहुँचे और उससे बोले।

यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च ।
रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता ।
न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः ॥ १७॥

शब्दार्थ

यशोदायाः—यशोदा की; सुताम्—पुत्री को; कन्याम्—कन्या को; देवक्याः—देवकी के; कृष्णम्—कृष्ण को; एव च—भी; रामम्—बलराम को; च—तथा; रोहिणी-पुत्रम्—रोहिणी का पुत्र; वसुदेवेन—वसुदेव द्वारा; बिभ्यता—भयभीत; न्यस्तौ—रख दिया; स्व-मित्रे—अपने मित्र ने; नन्दे—नन्द महाराज के यहाँ; वै—निस्सन्देह; याभ्याम्—इन दो के द्वारा; ते—तुम्हारे; पुरुषाः—मनुष्य; हताः—मारे गये।

[नारद ने कंस से कहा] : यशोदा की सन्तान वस्तुतः कन्या थी और कृष्ण देवकी का पुत्र

है। यही नहीं, राम रोहिणी का पुत्र है। वसुदेव ने डरकर कृष्ण तथा बलराम को अपने मित्र नन्द महाराज के हाथों में सौंप दिया और इन्हीं दोनों बालकों ने तुम्हारे आदमियों को मारा है।

तात्पर्य : कंस को विश्वास दिलाया गया था कि कृष्ण यशोदा का पुत्र है और देवकी की आठवीं सन्तान कन्या थी। देवकी की आठवीं सन्तान की पहचान कंस के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी क्योंकि भविष्यवाणी हुई थी कि उसकी आठवीं सन्तान कंस का वध करेगी। यहाँ पर नारद कंस को सूचित करते हैं कि देवकी की आठवीं सन्तान दुर्जेय कृष्ण है, जिसका गूढ़ार्थ यह है कि भविष्यवाणी को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया जाय। इस समाचार को पाने के बाद अब कंस निश्चित रूप से कृष्ण तथा बलराम को मार डालने में कोई कसर नहीं उठा रखेगा।

निशम्य तद्भोजपतिः कोपात्प्रचलितेन्द्रियः ।
निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

निशम्य—सुनकर; तत्—वह; भोज-पतिः—भोज-वंश का स्वामी (कंस); कोपात्—क्रोध से; प्रचलित—विक्षुब्ध; इन्द्रियः—इन्द्रियाँ; निशातम्—तेज; असिम्—तलवार को; आदत्त—उठा लिया; वसुदेव-जिघांसया—वसुदेव को मार डालने की इच्छा से।

यह सुनकर, भोजपति क्रुद्ध हो उठा और उसकी इन्द्रियाँ उसके वश में नहीं रह पाईं। उसने वसुदेव को मारने के लिए एक तेज तलवार उठा ली।

निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः ।
ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैर्बबन्ध सह भार्यया ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

निवारितः—रोक दिया गया; नारदेन—नारद द्वारा; तत्-सुतौ—उसके दोनों पुत्र; मृत्युम्—मृत्यु; आत्मनः—अपनी ही; ज्ञात्वा—जानकर; लोह-मयैः—लोहे से बनी; पाशैः—जँजीरों से; बबन्ध—(वसुदेव) को बाँध दिया; सह—समेत; भार्यया—उसकी पत्नी।

किन्तु नारद ने कंस को यह स्मरण दिलाते हुए रोका कि वसुदेव नहीं अपितु उसके दोनों पुत्र तुम्हारी मृत्यु के कारण बनेंगे। तब कंस ने वसुदेव तथा उसकी पत्नी को लोहे की जंजीरों से बँधवा दिया।

तात्पर्य : कंस को लगा कि वसुदेव को मारने से कोई लाभ नहीं है क्योंकि उसका वध तो वसुदेव के पुत्र कृष्ण तथा बलराम द्वारा होना है। आचार्यों के अनुसार नारद ने कंस को यह भी सलाह दी कि

यदि वह वसुदेव को मार देगा तो उसके दोनों युवा पुत्र भाग सकते हैं अतएव उसे न मारना ही श्रेयस्कर होगा। इसीलिए नारद ने संस्तुति की कि कंस को चाहिए कि वह कृष्ण तथा बलराम को अपनी राजधानी मथुरा में बुलाये।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि नारद ने कंस को यह सूचना देकर वसुदेव तथा देवकी जैसे महान् भक्तों के साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार नहीं किया। वस्तुत: जैसाकि ग्यारहवें स्कंध में बतलाया गया है वसुदेव नारद के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ थे क्योंकि वे कृष्ण के हाथों से कंस की मृत्यु की व्यवस्था करा रहे थे। यही नहीं, वे कृष्ण के मथुरा में आकर रहने और अपने प्रिय पिता से भेंट करने की भी व्यवस्था करा रहे थे।

प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम् ।
प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ ॥ २० ॥

शब्दार्थ

प्रतियाते—चले जाने पर; तु—तब; देव-ऋषौ—देवर्षि के; कंस:—राजा कंस; आभाष्य—सम्बोधित करते हुए; केशिनम्—केशी नामक असुर को; प्रेषयाम् आस—उसे बुलाया; हन्येताम्—दोनों मारे जाने चाहिए; भवता—तुम्हारे द्वारा; राम-केशवौ—बलराम तथा कृष्ण।

नारद के चले जाने पर राजा कंस ने केशी को बुलाया और उसे आदेश दिया, ''जाओ राम तथा कृष्ण का वध करो।''

तात्पर्य : कृष्ण तथा बलराम को मथुरा लाये जाने के पूर्व कंस ने एक और असुर को वृन्दावन भेजने का प्रयत्न किया।

ततो मुष्टिकचाणूर शलतोशलकादिकान् ।
अमात्यान्हस्तिपांश्चैव समाहूयाह भोजराट् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तत:—तब; मुष्टिक-चाणूर-शल-तोशलक-आदिकान्—मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल इत्यादि; अमात्यान्—अपने मंत्रियों को; हस्ति-पान्—अपने महावतों को; च एव—भी; समाहूय—बुलाकर; आह—कहा; भोज-राट्—भोजों के राजा ने।

इसके बाद भोजराज ने मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल इत्यादि अपने मंत्रियों तथा अपने महावतों को भी बुलाया। राजा ने उन्हें इस प्रकार सम्बोधित किया।

भो भो निशम्यतामेतद्वीरचाणूरमुष्टिकौ ।

नन्दव्रजे किलासाते सुतावानकदुन्दुभेः ॥ २२ ॥
रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः ।
भवद्भ्यामिह सम्प्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

भोः भोः—मेरे प्रिय (सलाहकारो); निशम्यताम्—सुनो; एतत्—यह; वीर—हे वीरो; चाणूर-मुष्टिकौ—चाणूर तथा मुष्टिक; नन्द-व्रजे—नन्द के ग्वाल-ग्राम में; किल—निस्सन्देह; आसाते—रह रहे हैं; सुतौ—दो पुत्र; आनकदुन्दुभेः—वसुदेव के; राम-कृष्णौ—राम तथा कृष्ण; ततः—उनसे; मह्यम्—मेरी; मृत्युः—मौत; किल—निस्सन्देह; निदर्शितः—सूचित की गई है; भवद्भ्याम्—तुम दोनों के द्वारा; इह—यहाँ; सम्प्राप्तौ—लाये जाकर; हन्येताम्—मार डाले जाने चाहिए; मल्ल—कुश्ती; लीलया—खेल के बहाने से।

मेरे वीरो, चाणूर तथा मुष्टिक, यह सुन लो। आनकदुन्दुभि (वसुदेव) के पुत्र राम तथा कृष्ण नन्द के व्रज में रह रहे हैं। यह भविष्यवाणी हुई है कि ये दोनों बालक मेरी मृत्यु के कारण होंगे। जब वे यहाँ लाए जायँ तो तुम उन्हें कुश्ती लड़ने के बहाने मार डालना।

मञ्चाः क्रियन्तां विविधा मल्लरङ्गपरिश्रिताः ।
पौरा जानपदाः सर्वे पश्यन्तु स्वैरसंयुगम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

मन्चाः—मंच; क्रियन्ताम्—बनाये जाँय; विविधाः—अनेक प्रकार के; मल्ल-रङ्ग—कुश्ती का अखाड़ा; परिश्रिताः—घिरा हुआ; पौराः—नगर के निवासी; जानपदाः—जनपदों के निवासी; सर्वे—सभी; पश्यन्तु—देखें; स्वैर—स्वेच्छापूर्वक; संयुगम्—प्रतिस्पर्द्धा, प्रतियोगिता।

तुम कुश्ती का अखाड़ा (रंगभूमि) तैयार करो जिसके चारों ओर देखने के अनेक मंच हों और नगर तथा जनपदों के सारे निवासियों को इस खुली प्रतियोगिता देखने के लिए ले आओ।

तात्पर्य : *मञ्चाः* शब्द बड़े बड़े ख भों से बनाये गये मंचन स्थल का द्योतक है। कंस उत्सवमय वातावरण चाहता था जिससे कृष्ण तथा बलराम आने से डरें नहीं।

महामात्र त्वया भद्र रङ्गद्वार्युपनीयताम् ।
द्विपः कुवलयापीडो जहि तेन ममाहितौ ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

महा-मात्र—हे महावत; त्वया—तुम्हारे द्वारा; भद्र—मेरे अच्छे आदमी; रङ्ग—अखाड़े के; द्वारि—दरवाजे तक; उपनीयताम्—लाया जाये; द्विपः—हाथी; कुवलयापीडः—कुवलयापीड़ नामक; जहि—विनष्ट कर दो; तेन—उस (हाथी) से; मम—मेरे; अहितौ—शत्रुओं को।

हे महावत, मेरे अच्छे आदमी, तुम अपने हाथी कुवलयापीड को अखाड़े के प्रवेशद्वार पर खड़ा करना और उसके द्वारा मेरे दोनों शत्रुओं को मरवा डालना।

आरभ्यतां धनुर्यागश्चतुर्दश्यां यथाविधि ।
विशसन्तु पशून्मेध्यान्भूतराजाय मीढुषे ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

आरभ्यताम्—शुरू किया जाय; धनुः-यागः—धनुष-यज्ञ; चतुर्दश्याम्—चतुर्दशी के दिन; यथा-विधि—वैदिक आदेशानुसार; विशसन्तु—यज्ञ में भेंट; पशून्—पशुओं को; मेध्यान्—अर्पित करने योग्य; भूत-राजाय—भूतप्रेतों के राजा, शिव को; मीढुषे—वर देने वाले।

वैदिक आदेशों के अनुसार चतुर्दशी के दिन धनुष यज्ञ प्रारम्भ किया जाय। वर-दानी भगवान् शिव को पशु-मेध में उपयुक्त प्रकार के पशु भेंट किये जाँय।

इत्याज्ञाप्यार्थतन्त्रज्ञ आहूय यदुपुङ्गवम् ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरमुवाच ह ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

इति—इन शब्दों के साथ; आज्ञाप्य—आज्ञा देकर; अर्थ—स्वार्थ के; तन्त्र—सिद्धान्त का; ज्ञः—जानने वाला; आहूय—बुलाकर; यदु-पुङ्गवम्—यदुओं में सर्वाधिक अग्रणी; गृहीत्वा—पकड़कर; पाणिना—अपने हाथ से; पाणिम्—हाथ को; ततः—तब; अक्रूरम्—अक्रूर से; उवाच ह—उसने कहा।

अपने मंत्रियों को इस तरह आदेश दे चुकने के बाद कंस ने यदुश्रेष्ठ अक्रूर को बुलवाया। कंस निजी लाभ निकालने की कला जानता था अतः अक्रूर के हाथों को अपने हाथ में लेकर वह उससे इस प्रकार बोला।

भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रमादृतः ।
नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

भोः भोः—हे प्रिय; दान—दान के; पते—स्वामी; मह्यम्—मेरे लिये; क्रियताम्—करें; मैत्रम्—मित्रोचित अनुग्रह; आदृतः—आदरवश; न—कोई नहीं; अन्यः—दूसरा; त्वत्तः—तुमसे बढ़कर; हित-तमः—अनुकूल कार्य करने वाला; विद्यते—है; भोज-वृष्णिषु—भोजों तथा वृष्णियों में।

हे सर्वश्रेष्ठ दानी अक्रूर, आप आदर के साथ मुझ पर मित्रोचित अनुग्रह करें। भोजों तथा वृष्णियों में आपसे बढ़कर कोई अन्य हम पर कृपालु नहीं है।

अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम् ।
यथेन्द्रो विष्णुमाश्रित्य स्वार्थमध्यगमद्विभुः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

अतः—अतएव; त्वाम्—तुम पर; आश्रितः—(मैं) आश्रित हूँ; सौम्य—हे भद्र पुरुष; कार्य—कर्तव्य; गौरव—गम्भीरतापूर्वक; साधनम्—सम्पन्न करने वाला; यथा—जिस तरह; इन्द्रः—इन्द्र ने; विष्णुम्—विष्णु की; आश्रित्य—शरण ग्रहण करके; स्व-अर्थम्—अपना लक्ष्य; अध्यगमत्—प्राप्त किया; विभुः—स्वर्ग का शक्तिशाली राजा।

हे भद्र अक्रूर, आप सदैव अपना कर्तव्य गम्भीरतापूर्वक करने वाले हैं अतएव मैं आप पर उसी तरह आश्रित हूँ जिस तरह पराक्रमी इन्द्र ने अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए भगवान् विष्णु की शरण ली थी।

गच्छ नन्दव्रजं तत्र सुतावानकदुन्दुभेः ।
आसाते ताविहानेन रथेनानय मा चिरम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

गच्छ—जाओ; नन्द-व्रजम्—नन्द के गाँव; तत्र—वहाँ; सुतौ—पुत्रों को; आनकदुन्दुभेः—वसुदेव के; आसाते—रह रहे हैं; तौ—उन दोनों; इह—यहाँ; अनेन—इस; रथेन—रथ से; आनय—लाओ; मा चिरम्—बिना देर लगाये।

कृपया नन्द-ग्राम जाँय जहाँ पर आनकदुन्दुभि के दोनों पुत्र रह रहे हैं और अविलम्ब उन्हें इस रथ पर चढ़ाकर यहाँ ले आयें।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती एक रोचक टिप्पणी देते हैं—''जब कंस ने कहा, ''इस रथ से'' तो उसने अपनी छिगुनी से एकदम नवीन आकर्षक रथ की ओर इशारा किया। कंस ने सोचा कि अक्रूर स्वभाव से भोला-भाला है, अतः जब वह इस सुन्दर नये रथ को देखेगा तो उसे हाँक कर उन दो बालकों को तुरन्त ले आना चाहेगा। किन्तु सर्वथा नवीन रथ पर चढ़ कर अक्रूर के जाने का वास्तविक कारण यह था कि जिस रथ पर दुष्ट कंस चढ़ चुका हो उस पर भगवान् का चढ़ना उचित नहीं।''

निसृष्टः किल मे मृत्युर्देवैर्वैकुण्ठसंश्रयैः ।
तावानय समं गोपैर्नन्दाद्यैः साभ्युपायनैः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

निसृष्टः—भेजा है; किल—निस्सन्देह; मे—मेरी; मृत्युः—मृत्यु; देवैः—देवताओं द्वारा; वैकुण्ठ—भगवान् विष्णु के; संश्रयैः—शरणागत; तौ—उन दोनों को; आनय—लाओ; समम्—साथ में; गोपैः—ग्वालों; नन्द-आद्यैः—नन्द इत्यादि; स—सहित; अभ्युपायनैः—उपहारों।

विष्णु के संरक्षण में रहने वाले देवताओं ने इन दोनों बालकों को मेरी मृत्यु के रूप में भेजा है। उन्हें यहाँ ले आइये तथा उनके साथ नन्द तथा अन्य ग्वालों को अपने अपने उपहारों समेत आने दीजिये।

घातयिष्य इहानीतौ कालकल्पेन हस्तिना ।
यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातये वैद्युतोपमैः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

घातयिष्ये—उन्हें मार डालूँगा; इह—यहाँ; आनीतौ—लाये गये; काल-कल्पेन—साक्षात् मृत्यु रूप; हस्तिना—हाथी के द्वारा; यदि—यदि; मुक्तौ—बच जाते हैं; ततः—तब; मल्लैः—पहलवानों से; घातये—मरवा डालूँगा; वैद्युत—बिजली; उपमैः—की तरह।

जब आप कृष्ण तथा बलराम को ले आयेंगे तो मैं उन्हें साक्षात् मृत्यु के समान बलशाली अपने हाथी से मरवा दूँगा। यदि कदाचित् वे उससे बच जाते हैं, तो मैं उन्हें बिजली के समान प्रबल अपने पहलवानों से मरवा दूँगा।

तयोर्निहतयोस्तप्तान्वसुदेवपुरोगमान् ।
तद्बन्धून्निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तयोः—उन दोनों के; निहतयोः—मारे जाने पर; तप्तान्—शोकसंतप्त; वसुदेव-पुरोगमान्—वसुदेव द्वारा ले जाये गये; तद्-बन्धून्—उनके सम्बन्धियों को; निहनिष्यामि—मार डालूँगा; वृष्णि-भोज-दशार्हकान्—वृष्णियों, भोजों तथा दशार्हों को।

जब ये दोनों मार डाले जायेंगे तो मैं वसुदेव तथा उनके सभी शोकसंतप्त सम्बन्धियों—वृष्णियों, भोजों तथा दशार्हों—का वध कर दूँगा।

तात्पर्य : आज भी विश्व-भर में ऐसे दुष्ट राजनीतिक नेता हैं, जो ऐसी ऐसी योजनाएँ बनाकर उन पर अमल भी करते हैं।

उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्यकामुकं ।
तद्भ्रातरं देवकं च ये चान्ये विद्विषो मम ॥ ३४॥

शब्दार्थ

उग्रसेनम्—राजा उग्रसेन को; च—और; पितरम्—पिता; स्थविरम्—वृद्ध; राज्य—राज्य के लिए; कामुकम्—लोभी; तत्-भ्रातरम्—उसके भाई; देवकम्—देवक; च—भी; ये—जो; च—तथा; अन्ये—अन्य; विद्विषः—शत्रुगण; मम—मेरे।

मैं अपने बूढ़े पिता उग्रसेन को भी मार डालूँगा क्योंकि वह मेरे साम्राज्य के लिए लालायित है। मैं उसके भाई देवक तथा अपने अन्य सारे शत्रुओं को भी मार डालूँगा।

ततश्चैषा मही मित्र भवित्री नष्टकण्टका ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

ततः—तब; च—तथा; एषा—यह; मही—पृथ्वी; मित्र—हे मित्र; भवित्री—होगी; नष्ट—विनष्ट; कण्टका—अपने काँटे।

तब हे मित्र, यह पृथ्वी काँटों से मुक्त हो जायेगी।

जरासन्धो मम गुरुर्द्विविदो दयितः सखा ।
शम्बरो नरको बाणो मय्येव कृतसौहृदाः ।
तैरहं सुरपक्षीयान्हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

जरासन्धः—जरासन्ध; मम—मेरा; गुरुः—गुरुजन (श्वसुर); द्विविदः—द्विविद; दयितः—मेरा प्रिय; सखा—मित्र; शम्बरः—शम्बर; नरकः—नरक; बाणः—बाण; मयि—मेरे लिए; एव—निस्सन्देह; कृत-सौहृदाः—प्रगाढ़ मैत्री रखने वाले; तैः—उनसे; अहम्—मैं; सुर—देवताओं के; पक्षीयान्—पक्ष वालों को; हत्वा—मारकर; भोक्ष्ये—भोगूँगा; महीम्—पृथ्वी को; नृपान्—राजागण।

मेरा ज्येष्ठ सम्बन्धी जरासन्ध तथा मेरा प्रिय मित्र द्विविद मेरे अतीव शुभचिन्तक हैं और वैसे ही शम्बर, नरक तथा बाण हैं। मैं इन सबों का उपयोग उन राजाओं का वध करने के लिए करूँगा जो देवताओं के पक्षधर हैं और तब मैं सारी पृथ्वी पर राज करूँगा।

एतज्ज्ञात्वानय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्भकौ ।
धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; ज्ञात्वा—जानकर; आनय—लाओ; क्षिप्रम्—शीघ्र; राम-कृष्णौ—राम तथा कृष्ण को; इह—यहाँ; अर्भकौ—बालकों को; धनुः-मख—धनुष यज्ञ; निरीक्षा-अर्थम्—निरीक्षण करने के लिए; द्रष्टुम्—देखने के लिए; यदु-पुर—यदुकुल की राजधानी के; श्रियम्—ऐश्वर्य को।

चूँकि अब आप मेरे मनोभावों को जान चुके हैं अतः तुरन्त जाइये और कृष्ण तथा बलराम को धनुष यज्ञ निहारने तथा यदुओं की राजधानी का ऐश्वर्य देखने के लिए ले आइये।

श्रीअक्रूर उवाच
राजन्मनीषितं सयक्तव स्वावद्यमार्जनम् ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्याद्दैवं हि फलसाधनम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

श्री-अक्रूरः उवाच—श्री अक्रूर ने कहा; राजन्—हे राजन्; मनीषितम्—विचार; सयक्—पूर्ण; तव—तुम्हारा; स्व—अपना; अवद्य—दुर्भाग्य; मार्जनम्—धोने वाला; सिद्धि-असिद्ध्योः—सफलता तथा विफलता दोनों में; समम्—समान; कुर्यात्—करना चाहिए; दैवम्—भाग्य; हि—अन्ततः; फल—फल, परिणाम; साधनम्—प्राप्त करने का साधन।

श्री अक्रूर ने कहा : हे राजन्, आपने अपने को दुर्भाग्य से मुक्त करने के लिए अच्छा उपाय ढूँढ निकाला है। फिर भी मनुष्य को सफलता तथा विफलता में समभाव रहना चाहिए क्योंकि निश्चित रूप से यह भाग्य ही है, जो किसी के कर्म के फलों को उत्पन्न करता है।

मनोरथान्करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि ।

युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

मनः-रथान्—उसकी इच्छाएँ; करोति—पालन करती है; उच्चैः—उत्साहपूर्वक; जनः—सामान्य व्यक्ति; दैव—भाग्य से; हतान्—नष्ट किया हुआ; अपि—भी; युज्यते—सामना करता है; हर्ष-शोकाभ्याम्—सुख तथा दुख से; तथा अपि—फिर भी; आज्ञाम्—आज्ञा; करोमि—करूँगा; ते—तुम्हारी।

सामान्य व्यक्ति अपनी इच्छाओं के अनुसार कर्म करने के लिए कृतसंकल्प रहता है भले ही उसका भाग्य उन्हें पूरा न होने दे। अतः वह सुख तथा दुख दोनों का सामना करता है। इतने पर भी मैं आपके आदेश को पूरा करूँगा।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि यद्यपि अक्रूर ने जो कुछ कहा था वह शिष्ट तथा उत्साहजनक था किन्तु उसका आशय भिन्न था। उनके कहने का अर्थ था, ''आपकी योजना पालन करने के योग्य नहीं है फिर भी मैं पालन करूँगा क्योंकि आप राजा हैं और मैं आपकी प्रजा हूँ। आपको हर हालत में मरना है ही।''

श्रीशुक उवाच

एवमादिश्य चाक्रूरं मन्त्रिणश्च विषृज्य सः ।
प्रविवेश गृहं कंसस्तथाक्रूरः स्वमालयम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; आदिश्य—आदेश देकर; च—तथा; अक्रूरम्—अक्रूर को; मन्त्रिणः—अपने मंत्रियों को; च—तथा; विसृज्य—विदा करके; सः—वह; प्रविवेश—प्रविष्ट हुआ; गृहम्—अपने घर में; कंसः—कंस; तथा—भी; अक्रूरः—अक्रूर; स्वम्—अपने; आलयम्—निवासस्थान को।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अक्रूर को इस तरह आदेश देकर कंस ने अपने मंत्रियों को विदा कर दिया और स्वयं अपने घर में चला गया तथा अक्रूर अपने घर लौट आया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''वृषभासुर अरिष्ट का वध'' नामक छत्तीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।